ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

अज्ञेय की असाध्य वीणा में प्रतीकात्मकता

Devendra Kumar Gupta

Assistant Professor, Dept. of Hindi, Government College, Dholpur, Rajasthan, India

सार

प्रयोगवाद और नयी कविता के प्रवर्तक "अज्ञेय" जी ने सभी विधाओं में अपनी अदभुत प्रयोगात्मक प्रगति का परिचय दिया है अज्ञेय स्वभाव से ही विद्रोही थे उनकी यह विद्रोही भावना उनके द्वारा रचे साहित्य में भी विविध रूपों में भी प्रतिफलित हुई।

साहित्यिक-सृजन के क्षेत्र में अज्ञेय जी ने एक साथ कवि ,कथाकार , आलोचक, संपादक, आदि विविध रूपों में साहित्यिक प्रेमियों को लुभाया तो दूसरी ओर व्यवहारिक जगत में फोटोग्राफी, चर्म-शिल्प, पर्वतारोहण, सिलाई- कला आदि से लोगो को चौंकाया । लेकिन उनका कवि व आलोचक व्यक्तित्व ही अधिक लोकप्रिय हुआ।

कवि क्षेत्र में उनका सबसे विशिष्ट अवदान यह है कि उन्होंने तत्कालीन परिवेश के अनुकूल कविता को जीवन की अनुरुपता में ढालकर नई काव्यात्मक चेतना के लिए एक नया वातावरण रचा।

वैसे तो अज्ञेय प्रगीतात्मक अभिव्यक्ति वाली छोटी कविताओं के कवि माने जाते हैं किंतु उन्होंने एक लम्बी कविता भी लिखी है- "असाध्य वीणा "। यह उनकी एक मात्र लंबी कविता है जिसकी रचना 'रमेशचन्द्र शाह' के अनुसार 18-20 जून ,1961 के दौरान हुई थी। यह कविता अज्ञेय के काव्य-संग्रह "आंगन के पार द्वार " में संग्रहीत है।

"असाध्य वीणा" एक जापानी पुराकथा पर आधारित है यह कथा 'आकोकुरा' की पुस्तक "द बुक ऑफ टी" में 'टेमिंग ऑफ द हार्प' शीर्षक से संग्रहीत है। श्री नरेन्द्र शर्मा ने अपने एक लेख में वह कथा इस प्रकार दी है लुंगामिन खाल में एक विशाल कीरी वृक्ष था , जिससे इस वीणा का निर्माण किया गया था। अनेक वादक कलाकार प्रयत्न करके हार गए पर वीणा नहीं बजा सके इसीलिए इसका नाम "असाध्य वीणा" पड़ गया। अंत में बीनकारों का राजकुमार पीवो ही उस वीणा को साध सका।

इस वीणा से उसने ऐसी तान छेडी कि उससे तरह तरह की स्वर लहरियां फूट पडी। कभी उसमे से प्रेम गीत निकलते, तो कभी युद्ध का राग सुनाई पडता है। लेकिन अज्ञेय जी द्वारा रचित 'असाध्य वीणा' कविता में कथा नितांत भारतीय संदर्भो में ही घटित होती है और इस तरह घटित होती है कि उसका अभारतीय रूप धुल जाता है। दूसरे शब्दों में अज्ञेय ने एक अभारतीय कथा के आख्यान को एक भारतीय कविता के आख्यान में अदभुत काव्य-कौशल के साथ घुलनशील बना दिया है। इस घुलनशील से जो काव्यानुभव प्राप्त होता है वह इस कविता में प्रस्तुत दो भिन्न संस्कृतियों के आख्यानों की सीमा रेखाओं का अतिक्रमण करता प्रतीत होता है। अज्ञेय जी ने इस कथा का भारतीयकरण करते हुए बताया है कि किरीटी नामक वृक्ष से यह वीणा वज्रकीर्ति ने बनाई थी। लेकिन राजदरबार के समस्त कलावंत इस वीणा को बजाने का प्रयास करते हुए हार गये किन्तु सबकी विद्या व्यर्थ हो गई क्योंकि यह वीणा तभी बजेगी जब कोई सच्चा साधक इसे साधेगा।

अन्त में इस 'असाध्य वीणा' को केशकम्बली प्रियंवद ने साधकर दिखाया।जब केशकम्बली प्रियंवद ने असाध्य वीणा को बजाकर दिखाया तब उससे निकलने वाले स्वरों को राजा , रानी और प्रजाजनों ने अलग-अलग सुना। किसी को उसमें

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

ईश्वरीय कृपा सुनाई पड़ रही थी तो किसी को उसकी खनक तिजोरी में रखे धन की खनक लग रही थी । किसी को उसमें से नववधू की पायल की रूनझुन सुनाई दे रही थी तो किसी को उसमें शिशु की किलकारी की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

वस्तुत : असाध्य वीणा जीवन का प्रतीक है, हर व्यक्ति को अपनी भावना के अनुरूप ही उसकी स्वर लहरी प्रतीत होती है । व्यक्ति को अपनी भावना के अनुरूप ही सत्य की उपलब्धि होती है तथा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को कला की प्रतीति भिन्न-भिन्न रूप में इसलिए होती है, क्योकि उनकी आन्तरिक भावनाओं में भिन्नता होती है । इससे यह भी ध्वनित होता है कि कला की विशिष्टता उसके अलग-अलग सन्दर्भों में , अलग-अलग अर्थो में होती है।

'असाध्य वीणा' को वही साध पाता है जो सत्य को एवं स्वयं को शोधता है या वो जो परिवेश और अपने को भूलकर उसी के प्रति समर्पित हो जाता है ।

यह बाहर से भीतर मुडने की प्रक्रिया है जिसे अंतर्मुखी होना भी कहा जा सकता है। बौद्ध दर्शन में इसे 'तथता' कहा गया है जिसमे स्वयं को देकर ही सत्य को पाया जा सकता है, अज्ञेय जी यही कहना चाहते हैं इस कविता के माध्यम से।

असाध्य वीणा कविता चीनी(जापानी) लोक कथा पर आधारित है, जो 'ओकाकुरा' की पुस्तक 'दी बुक ऑफ़ टी' में संग्रहित है। यह कविता अज्ञेय के काव्य संग्रह 'आँगन के पार द्वार' (1961) में संकलित है। आँगन के पार द्वार कविता के तीन खण्ड है –

1. अंतः सलिला
2. चक्रान्त शिला
3. असाध्य वीणा

असाध्य वीणा की संक्षेप में कहानी यह है कि एक राजा के पास वज्रकीर्ति द्वारा निर्मित्त एक ऐसी वीणा थी जिसे कोई साध नहीं पाया था। अन्ततः राजा के निमंत्रण पर एक बार प्रियचंद केश कंबली नामक एक साधक उसकी सभा में उपस्थित हुआ। उसने वीणा को साधकर दिखला दिया। उसके स्वर में सभा में उपस्थित सभी व्यक्तियों ने अपना-अपना सत्य पाया। असाध्य वीणा की रचना किरीट तरू से की गई थी। यह वृक्ष भव्य और दिव्य जीवन का प्रतीक था। वीणा को बजाने के लिए सच्ची स्वर सिद्धि चाहिए।

परिचय

कवि ने असाध्य वीणा में सृजनात्मक रहस्य को समझाने का प्रयत्न किया है। सम्पूर्ण समर्पण के द्वारा श्रेष्ठ रचना संभव है। वैयक्तिक अह्म का विस्मरण कर जब साधक सृष्टि के साथ लयबद्ध हो जाता है तब रचनात्मक चमत्कार पैदा होता है। प्रियबंद के वीणा साधे जाने पर जो संगत अवतरित होता है उसका प्रभाव व्यापक है। वह एक ही समय में अनेक व्यक्तियों के लिए अलग-अलग रूपों को अभिव्यक्ति देता है। अन्त में साधक कहता है – शून्य और मौन के द्वारा वीणा को साधना संभव हुआ। अज्ञेय के लिए रचना की बडी सार्थकता उस गरिमा में निहित है जो मौन और शून्य से फूटती है। अज्ञेय ने इस कविता में बौद्ध धर्म के तथता सिद्धान्त की ओर ध्यान आकर्षित किया है। 'असाध्य वीणा' लंबी कविता में 'किरीट तरु' परम सत्ता का प्रतीक है और 'प्रियंवद' व्यक्ति सत्ता का। परम सत्ता असीम और विराट है जबकि व्यक्ति सत्ता सीमित है। उस परम सत्ता से मिल जाने , उसे जान लेने की आकांक्षा हमेशा व्यक्ति सत्ता में रही है।[1] अज्ञेय के यहाँ इस लंबी कविता में प्रियंवद(व्यक्ति सत्ता) एक लंबी साधना प्रक्रिया से गुजरता है। वह अपने आत्म(I) को उस परम सत्ता(thou) में विलीन कर देता है। इसलिए आत्म विसर्जन के जरिये वह स्वयं को परम सत्ता से जोड़ देता है। यही पूरी कविता की मूल संवेदना है। इस आत्म विस्तार की प्रक्रिया में कोई आध्यात्मिकता नहीं है। प्रियंवद की साधना हर नयी सृजना की मूल प्रक्रिया है।

लघु संकेत समझ राजा का गण दौड़े। लाये असाध्य वीणा साधक के आगे रख उसको, हट गये। सभी की उत्सुक आँखें एक बार वीणा को लख, टिक गयीं, प्रियंवद के चेहरे पर।'असाध्य वीणा' अज्ञेय की एक महत्वपूर्ण कलाकृति हैं। यह उनकी लम्बी कविता है जो सर्जना के गहन व विशिष्ट स्तरों का संकेत देती है। इसकी कथा प्रख्यात प्राचीन चीनी कथा पर आधारित हैं। इस कविता पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव भी माना जाता है। असाध्य वीणा की कथा जिसी राजा और कलाकार की साधना से बनी है। वीणा का निर्माण उत्तराखण्ड के गिरिप्रान्तर के घने वनांे में उगे हुए करीटी तरु से हुआ है। वज्रकीर्ति ने इस वीणा को बनाया है। वज्रकीर्ति वीणा बनाकर राजा को भेंट कर देता है।

वीणा को बनाने में व्रजकीर्ति ने अपना जीवन पूरा जीवन लगा दिया था। वीणा तो बन गयी, पर व्रजकीर्ति का जीवन समाप्त हो गया। अब वीणा को बजाने वाला कोई नहीं रहा। अतः वह वीणा असाध्य वीणा होकर रह गयी। यद्यपि राजा के दरबार में अनेक कलाकार थे, लेकिन कोई भी कलावन्त उस वीणा को न बजा सका। एक दिन राजा के आमन्त्रण पर एक प्रियवंद नाम का महान तपस्वी साधक वहाद्द आया और उसने अपनी साधना से वीणा के असाध्य तारांे को झंकृत कर दिया। इसी प्रसंग में कवि कह रहा है कि वह असाध्य वीणा, जिसे अनेक साधक साधने में असफल रहे, उसे झंकरित करने के लिए जब प्रियवंद, केशकम्बली का आगमन राजा के दरबार में हुआ तब राजा ने प्रियवंद को उस असाध्य वीणा के इतिहास से परिचित कराया। प्रियवंद के साथ राजा के वार्तालाप से ही वीणा लाने का संकेत पाकर सेवकजन उस असाध्य वीणा को दरबार में ले आये।

यह वीणा कोई साधारण वीणा न थी, अपितु इसे तो अनेक अनुभवी, ज्ञानी, साधक भी साधने में असफल रहे थे, इसीलिए सम्भवतः इसे 'असाध्य वीणा' की संज्ञा दी गयी। सेवकों ने वह वीणा साधक अर्थात् प्रियवंद के सम्मुख रख दी। वस्तुतः एक सच्ची साधना लक्ष्याभिमुख पर ही आधारित होती है। इस सच्ची साधना के अभाव में ही अनेक साधक इस वीणा को झंकरित करने में असफल रहे। अब समस्त सभाजनों की उत्सुक आँखों ने पहले उस अद्भूत वीणा को देखा और फिर उसे साधने का प्रयास करने वाले साधक प्रियवंद को देखा।[2]
(1) यहाँ कवि ने 'उत्सुक आँखों' का अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया गया है। वस्तुतः अनेक साधकों द्वारा भी असाध्य होने के कारण यह वीणा उत्सुकता का विषय बनी हुई है। प्रियवंद केशकम्बली भी इसे साधने में सफल होता है अथवा अफसल, यही जानने की उत्सुकता सभाजनों में विद्यमान है। यह उत्सुकता इतनी महती, प्रबल हो गयी है कि अब वह हृदय में भी समाहित नहीं हो पा रही है और न हृदय में भी समाहित नहीं हो पा रही है और नेत्रों के माध्यम से प्रतिबिम्बित हो रही है।
(2) 'सभा' शब्द का प्रयोग भी यहाँ अत्यन्त सार्थक प्रतीत होता है। यहाँ विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व राजा, रानी कर रहे हैं और सामान्य वर्ग का द्योतित करने हेतु सभा का प्रयोग किया गया है। वीणा यहाँ अभिव्यक्ति का प्रतीक है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि उग्र वीणा को मन्त्रमुग्ध, मनमोहक, आत्मविस्मृत-सी कर देने वाली झंकार न केवल विशिष्ट वर्ग के लिए है, अपितु वह सामान्य जन तक भी सम्प्रेषित होगी। अर्थात् कवि की लोकातीत, कालातीत अभिव्यक्ति समस्त वर्गों के लिए होती है, यह अलग बात है कि वह आत्माभिव्यक्ति व्यक्ति अपनी-अपनी मनोभूमि से ग्रहण करता है।
(3) कवि के अनुसार वीणा आत्मभिव्यक्ति की प्रतीक है और प्रियवंद की साधना की प्रक्रिया वस्तुतः कविता रचने के क्रम को सूचित करती है।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

विचार-विमर्श

यह वीणा उत्तरखाण्ड के गिरि-प्रान्तर से
घने वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी-
बहुत समय पहले आयी थी।
पूरा तो इतिहास न जान सके हमः
किन्तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
जिस प्राचीन करीटी-तरु से इसे गढ़ा था-

'असाध्य वीणा' शीर्षक लम्बी कविता से अवतरित इस अंश पूर्वोक्त प्रसंग में ही राजा प्रियवंद को वीणा के इतिहास से परिचित कराते हुए कहता है कि असाध्य वीणा उत्तराखण्ड में विशाल पर्वतों के मध्य स्थित सघन वनों वाले ऐसे स्थल से बहुत समय पूर्व आयी थी, जहाँ सदैव तपस्वी जन योग आदि में रत रहते है। अर्थात् जिस वन प्रान्तर का वातावरण मन्त्रोच्चारण, यज्ञादि की अग्नि से तथा तप के उज्जवल, शुभ्र आलोक से पवित्र रहता है, उसी वन के किरीटी तरु के काष्ठ से इस अद्भूत वीणा का निर्माण हुआ है।

राजा कहता है कि इस अति प्राचीन वीणा के सम्पूर्ण इतिहास से तो हम भी अनभिज्ञ है, किन्तु सुनने में यहीं आया है कि इस अतिविशिष्ट वीणा का निर्माण व्रजकीर्ति द्वारा सम्पन्न हुआ है। व्रजकीर्ति ने दैवी मन्त्रों से शुद्धित, अनायास प्रदत्त अलौकिक गुणों के अखण्ड कोष, अति प्राचीन किरीट तरु के काष्ठ से इसे गढ़ा था।
(1) प्रस्तुत पंक्तियों में वीणा अभिव्यक्ति का, किरीट तरु परम्परा से गृहीत व्यष्टि और समष्टिगत असंख्य अनुभूतियों के पुंजीभूत रूप का तथा व्रजकीर्ति यशःकाय कवियों का प्रतीक है। जिस प्रकार किरीट तरु से अनेक वर्षों तक कठिन तप के पश्चात् वज्रकीर्ति ने वीणा का निर्माण किया, उसी प्रकार कवि भी एक लम्बे अन्तराल से अपने से संचित, चराचर जगत में सम्पृक्त अनुभूतियों को अभिव्यक्ति का रूप प्रदान करते है और ऐसी अभिव्यक्ति ही सार्वजनीन होकर कवि को अमर, यशस्वी देह प्रदान करती है।
(2) 'गढ़ा' शब्द अत्यन्त सार्थक है। जिस प्रकार वीणा का निर्माण शनैः शनैः अनेक वर्षों में सम्पन्न हुआ, उसी प्रकार एक संवेदनशील, मर्मज्ञ कवि सर्वजनसम्पृक्त अनुभूतियों को कविता के रूप में आकार देता है, उन्हें स्थूल स्वरूप प्रदान करता है और फिर यही लोकातीत, कालातीत, सीमातीत अभिव्यक्ति जन-जन तक सम्प्रेषित होकर उसे कीर्ति का पात्र बनाती है।[3]
(3) जिस प्रकार व्रजकीर्ति द्वारा निर्मित वीणा एक मौलिक वीणा एक मौलिक रचना है। उसी प्रकार व्यष्टि से विलग तथा सव्यष्टि से सम्पृक्त होकर जब साहित्यिकार कविता के माध्यम से अपनी कालातीत अनुभूतियाँ अभिव्यक्त करता है तो वह कविता भी मौलिक स्वरूप धारण करती है।
(4) असाध्य वीणा गढ़ने की प्रक्रिया वस्तुतः कविता के रचने की प्रक्रिया है। वीणा को गढ़ने की प्रक्रिया, रचना प्रक्रिया और सम्प्रेषण प्रक्रिया को युगपत रूप से प्रतीकित करती है।
(5) प्रतीकों का अत्यन्त सटीक, सार्थक, सहज व स्वाभाविक प्रयोग कविता में निहित अर्थ को उद्घाटित कर देता है।

पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियवंद साध रहा था वीणा-
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।
सघन निविड में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी-तरु को।
कौन प्रियवंद है कि दम्भ कर

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे ?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन-भर साधना रही ?

प्रस्तुत पद्यावतरण अज्ञेय कृत 'असाध्य वीणा' शीर्षक लम्बी कविता से लिया गया है। प्रियवंद को वीणा के समक्ष नतमस्तक देखकर सम्पूर्ण सभा हतप्रभ सी थी। सभी के हृदय में प्रियवंद की सफलता के प्रति शंका उत्पन्न हो रही थी, परन्तु प्रियवंद वस्तुतः अपनी अन्श्चेतना से सम्पृक्त होता हुआ बाह्य संसार से पूर्णतया कट चुका था। इस प्रकार वह आत्मनिर्वासित-सा होकर उस असाध्य वीणा व अतिप्राचीन किरीटी तरु से अपना तादात्मय स्थापित कर रहा था।

इस भाव को इन पंक्तियों में प्रस्तुत करते हुए कवि कह रहा है कि प्रियवंद को वीणा पर नतमस्तक होता हुआ देखकर सभा के हृदय में सहज आंशका ने जन्म ले लिया। प्रियवंद की सफलता-असफलता, विजय-पराजय, के प्रति अनेक शंकाएँ नाना प्रश्न सभाजनांे के अन्तर्मन को व्यथित करने लगे, परन्तु वातावरण शब्दरहित, नीरव, स्तब्ध था, जिसमें कही कोई हलचल नहीं थी। ऐसे स्पन्दित सन्नाटे में गतिहीन, क्रियाहीन प्रियंवद वस्तुतः वीणा को साधने में प्रयासरत था अथवा वह आत्मशोधन कर रहा था।
कवि अज्ञेय ने यहाँ 'सन्नाटे ' का अति सार्थक विशेषण 'स्पन्दित' प्रयुक्त किया है। वस्तुतः सभा तो पूर्णतया मौन, निस्तब्ध थी, परन्तु सभाजनों के हृदय को प्रियवंद की जय-पराजय के प्रश्न अपने घात-प्रतिघातों से आलोडि़त-विलोडि़त कर रहे थे। बाह्य वातावरण नीरव होते हुए भी अन्तर्मन सहज आशंका के वशीभूत होकर अति व्याकुल अवस्था में स्पन्दित हो रहा था। इस शब्दहीन स्पन्दित वातावरण में कलावन्त प्रियवंद एकाग्रचित होकर, एकात्मभाव से शनैः शनैः अपनी अन्तश्चेतना से सम्पृक्त हुआ तथा बाह्य वातावरण से कटकर उस असाध्य वीणा को साधने का प्रयास कर रहा था।

'साधना' शब्द सारगर्भित है। जब मनुष्य बाह्य संसार से पूर्णतया कटकर अपने अन्तर्मन की गहराइयों तक, अपने साध्य से जुड़ता है, उससे तादातम्य स्थापित करता है, तब साधने की प्रक्रिया आरम्भ होती है।[4]
कवि कहता है कि मौन प्रियवंद वस्तुतः स्वयं को शोधने की प्रक्रिया भी उसी एकान्त में कर रहा था। शोधना अर्थात् परिशोधन करना, स्वयं को संस्कारयुक्त करना है। अपने अहंभाव, वैयक्तिता को शनैः शनैः आत्मविवेचन द्वारा सद्गुणों के सारतत्व को ग्रहण करना ही वस्तुतः आत्मशोधन की प्रक्रिया है। इस प्रकार का आत्मशोधित, आत्मविवेचित, संस्कारयुक्त प्रियवंद स्वयं को उस सघन एकान्त में, एकनिष्ठ भाव से उसी प्राचीन किरीटी तरु को सौंप रहा था जिसमें इस असाध्य वीणा को निर्माण हुआ था। एकान्त भी सघनतम तब बनता है, जब व्यक्ति आत्मनिर्वासित हो जाता है, वह बाह्य क्रियाकलापों से पूर्णतया विलग होकर अपनी अन्तश्चेतना से सम्पृक्त हो जाता है।

ऐसे ही एकान्त में वह साधक प्रियंवद अपने परिशोधित अस्तित्व को, व्यक्तिगत रूप कोे, उस किरीटी तरु के प्रति समर्पित कर रहा था। वह किरीटी तरु जो परम्परा से गृहीत व्यष्टि और समष्टिगत असंख्य अनुभूतियों का अखण्ड पुंजीभूत स्वरूप है, उसके प्रति आज प्रियंवद अपना आत्मशोधित व्यक्तित्व एकनिष्ठ भाव से समर्पित कर रहा था।
प्रियंवद अपने को इस समष्टिगत स्वरूप के प्रति समर्पित कर स्वतः ही यह प्रश्न करता है कि ऐसा कौन प्रियंवद है, ऐसा कौन साधक है जो अपने अंहभाव को कुरूपित व्यक्तिगत के साथ इस मंत्रपूत वीणा का साक्षात्कार भी कर सके। अर्थात् अहंग्रस्त व्यक्तिगत इस अप्रतिम कलाकार के वाद्य का साक्षात्कार ही नहीं कर सकता, उसे झंकरित करना तो दूर की बात है। दम्भ वे विरूपित साधना साधक का सत्य से साक्षात्कार कराने में बाधक हाती है।

प्रियंवद स्व-अस्तित्व को विस्मृत कर कहता है कि ऐसा कौन समर्थ है जो इस असाध्य वीणा को झंकरित कर सके। यह वीणा कोई सामान्य वीणा नही है, अपितु यह तो वज्रकीर्ति के सम्पूर्ण जीवन की साधना का ही प्रतिफल है। व्रजकीर्ति ने बाह्य उपादानों द्वारा, जिनमें आदिम अनुभूतियाँ संचित थी, अपनी अनवरत साधना करते हुए इस वीणा का निर्माण किया था। अतः ऐसी विशेषतिविशेष वीणा को कौन झंकृत करने में समर्थ है।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

(1) 'सौंपना' शब्द अतिसारगर्भित है। वस्तुतः यह अज्ञेय की रचना-प्रक्रिया का मूलमन्त्र है। ''सत्य के सम्मुख साधना के सम्मुख व्यक्ति अपनी अलग इकाई को सौंपकर, अंहमुक्त होकर ही अपनी व्यक्तिनिष्ठ साधना की परमोपलब्धि कर सकता है।''

मैं सुनूँ,
गुनूँ,
विस्मय से भर आँकूँ
तेरे अनुभव का एक-एक अन्तःस्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय-
गा तूः
तेरी लय पर तेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।

पूर्व प्रसंग में ही किरीटी तरु के समक्ष विनयावनत प्रियवंद के मनोगत भावों को उद्भासित करते हुए कविवर अज्ञेय ने संवदेनशील कवि की अभिव्यक्ति के उपरान्त उत्पन्न अद्‌भूत संतोष की भावना को प्रतीकात्मक रूप से चित्रित किया है। प्रियंवद किरीटी तरु को सम्बोधित करते हुए कहता है कि परम्परा से गृहीत व्यष्टि व समष्टिगत अनुभूतियाँ जो तुझमें केन्द्रीभूत हो गयी है, उनके अन्तःस्वरांे को मैं सूनूँ, भली-भाँति ग्रहण करूँ और आश्चर्यचकित होकर उनकी विवेचना करूँ।[5]

'अनुभवों को एक-एक अन्तःस्वर' कहने का तात्पर्य यह है कि मैं तेरे मात्र बाह्य सम्पूर्ण रहस्यों को जानना चाहता हूँ। 'विस्मय से भर आँकूँ' अति अर्थगर्भित पंक्ति है। जिस प्रकार एक शिशु जब घर के आँगन की सीमा में ही क्रीङारत रहता है तो वह बाह्य जगत के उपादानों से पूर्णतया अनभिज्ञ रहता है, जब कोई उसे गोद में उठाकर घर की सीमा से बाहर ले जाता है तो वह सभी वस्तुओं को हतप्रभ, आश्चर्यचकित होकर देखता है, उसे जानने का प्रयास करता है, उसी प्रकार प्रियंवद कहता है कि जब सृष्टि के रहस्यों से अनभिज्ञ मेरे समक्ष तुम एक-एक करके समस्त रहस्यों को अनावृत्त करोगे तो मैं विस्मित होकर चकित-सा उन रहस्यों की विवेचना करूँगा।

जिस प्रकार माँ अपने शिशु को अति आत्मीय भाव से संगीत के स्वर गुनगुनाकर सुला देती है, उसी प्रकार तू भी मेरे प्रति आत्मीय भाव रखकर मेरे समक्ष सृष्टि के रहस्य अनावृत्त कर। 'गा तू' शब्द अति सार्थक है। प्रियवंद के अनुसार है विराटकाय किरीटी तरु! यदि तू स्नेहिल स्वरांे से मुझे सृष्टि के रहस्यों से अवगत करायेगा तो मेरे लिए वे जटिलमय रहस्य भी सरलतापूर्वक ग्राह्य हो जायेंगे। प्रियवंद इच्दा व्यक्त करता है कि जब तू सृष्टि के, अखिल ब्रह्माण्ड के रहस्य अनावृत्त करे तो मेरी साँसें उन्हें ग्रहण करे।

साँसों से कवि का तात्पर्य सम्पूर्ण प्राणशक्ति, अन्तश्चेतना से है। प्रियंवद के अनुसार वह अवस्था आ जायेगी कि बाह्य सृष्टि की अनुभूतियों को ग्रहण करने को, मेरे अन्तर्मन मे कोई स्थान शेष न रह जायेगा और तेरे पास भी कोई ऐसा रहस्य शेष नहीं रह जायेगा जो मेरे समक्ष अनावृत्त न हुआ हो, तब मेरे हृदय में संचित वे समस्त रहस्य, अपनी पूरी सामथ्र्य, योग्यता के साथ, अभिव्यक्त हो जायेगें और मैं तेरे ही अंश से निर्मित उस असाध्य वीणा को झंकरित करने में सफलता प्राप्त कर सकूँगा। इस प्रकार जब मेरे जीवन का लक्ष्य पूर्ण हो जायेगा, तब मेरी ये साँसें, मेरी अन्तश्चेतना अर्थात् स्वयं मैं सम्पूर्ण मानसिक व शारीरिक श्रम से रहित होकर तुम्हारी शरण में शांति प्राप्त करूँगा।

यहाँ कविवर अज्ञेय वस्तुतः यह स्पष्ट करना चाहते है कि जब संवदेनशील कवि अपने में संचित समष्टिगत अनुभूतियों को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त कर देता है तो उसे लक्ष्य प्राप्त हो जाता है और फिर उसे एक अनिर्वचनीय, अवर्णनीय आनन्द, आत्मसंतोष की प्राप्ति होती हैं।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

(1) इस आत्मीयकरण की प्रक्रिया सहसा कवि के मन में अपनी भोगी अनुभूतियों की शंृखला जगा देती है और उसे 'हाँ स्मरण है' के माध्यम से सब कुछ खण्डशः उपलब्ध होने लगता है।
(2) पद्यावतरण की अन्तिम पंक्ति में वर्णमैत्री और 'ध्वन्यात्मकता' अर्थ को और अधिक प्रभावमयता प्रदान कर रही है। प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग भी द्रष्टव्य है।

मुझे स्मरण है
उझक क्षितिज से
किरण भोर की पहली
जब तकती है ओस-बूँद को
उस क्षण की सहसा चैंकी-सी सिहरन।
और दुपहरी में जब
घास-फूल अनदेखे खिल जाते हैं
मौमाखियाँ, असंख्य झूमती करती हैं गुंजार-
उस लम्बे विलमे क्षण का तन्द्रालस ठहराव।

प्रस्तुत पंक्तियों में पूर्व प्रसंगानुसार ही कवि अज्ञेय ने प्रकृति की आत्मीयता, उसके अतीन्द्रिय सौंदर्य की तरलता को आत्मसात् करते हुए उसके विभिन्न उपादानों के मध्य स्थापित रागात्मक सम्बन्ध का बिम्बात्मक शब्द-चित्र अंकित किया है जिसे प्रियवंद न केवल अपने अन्तर्मन में उनका स्पन्दन अनुभव कर रहा है, अपितु स्मृतियों के परावर्तन के माध्यम से उन्हें पुनः अनुभूत भी कर रहा है।

प्रियवंद के अनुसार प्रभाव की प्रथम किरण ने क्षितिज से झाँककर पृथ्वीतल को देखा और रात्रि में झरी तरल, कोमल, ओस-बिन्दु को वहाँ देखकर, वह भोर की नव-किरण उससे सम्पृक्त हो गयी और ओस की बूँद अकस्मात् उसका स्पर्श पाकर सिहर उठी, पुलकित हो उठी। प्रकृत्ति का यह कोमल दृश्य स्मृतियों के परावर्तन से प्रियवंद को पुनःस्मरण हो आया है। वस्तुतः कवि ने यहाँ अति सुन्दर बिम्बात्मक चित्रण किया है।

ओस-बिन्दु आकाश से झरे हैं और किरण का विनाश भी वही है, अर्थात् दोनों जैसे बिछुङ गये हों और क्षितिज के आँगन में सोयी प्रभात-किरण जब निद्रा से जागी तो अपने संगी ओस-बिन्दु को निकट न पाकर बङी उत्सुकता के साथ, पंजों के बल उलझकर क्षितिज से इधर-उधर देखने लगी तो उसे वह पृथ्वीतल पर दिखाई पङी और तत्क्षण वह उससे मिलने को चल पङी किरण का प्रणयातुर स्पर्श पाकर ओस की बूँद किरणरूपी अप्रत्याशित प्रिय का अकस्मात सान्निध्य इतना निकट पाकर आहाद से, भावातिरेक से सिहर उठी।[6]
कवि के अनुसार अपराह्न काल में जब अनजाने, अनचीन्हे घास-फूस भी खिल जाते हैं अर्थात् दोपहर में जब सूर्य का प्रकाश धरती के कण-कण को अपने आगोश में ले लेता है और घास-फूल भी उस आलोक में चमक उठते हैं। मधुमक्खियाँ अपने गुंजार के माध्यम से रसपान की आतुरता को व्यक्त करने लगती है।

कवि के अनुसार ऐसा क्षण-विशेष जिसमें प्रकृति का साधारण से साधारण अंग भी उसके साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर, प्रकृति की आत्मीयता सरसता का अर्जन करता है, तो मेरे लिए उतना ही दीर्घ व विलम्बित हो गया है जैसे कोई संगीतज्ञ एक स्वर को लम्बे अन्तराल पर खींचे लेता है। यह क्षण विशेष न केवल दीर्घ ही हुआ है, अपितु इसने मुझे भावमय, तन्द्रिल अवस्था प्रदान कर दी है।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इसने मुझे भावमय, तन्द्रिल अवस्था प्रदान कर दी है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार निद्रा व जागरण से पूर्व की अवस्था में आलस्य इतना प्रबल होता है कि व्यक्ति उसके वशीभूत होकर अपने आवश्यक कार्य भी नहीं कर पाता, उसी प्रकार प्रकृति व उसके उपादानों के मध्य स्थापित तादात्मय को भावविहल होकर कवि जैसे अपने समस्त कार्यों से विमुख हो तन्द्रिल अवस्था में ठहर गया है।

यहाँ कवि ने तो सोना चाहता है और न ही जागने ही इच्छा रखता है, क्यांेकि यदि वह सो जायेगा तो प्रकृति के इस अनुपमेय अद्वितीय दृश्य को देखने से वंचित रह जायेगा और यदि वह जाग जायेगा अर्थात् सचेत हो जायेगा तो जीवन सम्बन्धी अन्य चिन्ताएँ उसकी आत्मा को इस दृश्य का पूर्ण रसास्वाद नहीं करने देंगी और वह अतृप्त रह जायेगा।[7]
टिप्पणी- (1) प्रियंवद के अन्तर्मन में सुप्तावस्था में विद्यमान अनुभूतियाँ स्मृतियों के परावर्तन से जाग्रत हो रही है।
(2) 'उझक' शब्द अति ध्वन्यात्मक है, जो स्वयं में , देखने वाले का , सम्पूर्ण औत्सुक्य आतुरता को समाहित किए हुए है।

सहसा वीणा झनझना उठी-
संगीतकार की आँखों में ठंडी पिघली ज्वाला सी झलक गयी-
रोमांच एक बिजली सा सबसे तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयंभू
जिसमें सोया है अखण्ड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।
डूब गये सब एक साथ।
सब अलग-अलग एकाकी पार तिर।'असाध्य वीणा' कविता की इन पंक्तियों में कवि अज्ञेय ने उस स्थिति का वर्णन किया है जबकि प्रियंवद की मौन साधना के परिणामस्वरूप अचानक वीणा बज उठती है। कवि कह रहा है कि मौंन साधक प्रियवंद आत्मशोधन करते हुए जब पूरी तरह वीणा के प्रति समर्पित हो गया और उसने अपने अंहकार को वीणा के प्रति पूरी तरह समर्पित कर दिया तब अचानक वीणा के तार झनझना उठे।

उनसे जो स्वर-लहरी निकली उसकी एक चमक संगीतकार की आँखों में उस ज्वाला के समान दिखलाई दी जो शीतल होकर पिघलने लगती है। स्पष्ट अर्थ यह है कि जिस प्रकार जमा हुआ हिम गर्मी पाकर पिघल जाता है वैसे ही वीणा प्रियवंद की मौन-साधना की उष्णता पाकर पिघल गयी और उसकी स्वर-लहरी सुनकर संगीतकार की आँखों में एक अद्भूत ज्योति उत्पन्न हो गयी।
कवि अज्ञेय कह रहे है कि वीणा के बजते ही वहाँ पर उपस्थित सभी व्यक्तियों के शरीर में एक रोमांच उत्पन्न हो आया।

सभी ने यह अनुभव किया कि उनके शरीरों में कोई विद्युत तरंग दौड़ने लगी हो। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी पर संगीत की धारा बहने लगी जो साक्षात् ईश्वर की धारा जैसी थी। कवि ने लेखा है कि उस संगीत धारा में एक अखण्डता थी और सम्पूर्ण सृष्टि की प्रभा उसमें व्याप्त थी। संगीत की उस अदभूत अलौकिक स्वर लहरी में सभी आनन्दित होकर डूब गये। ऐसा लगा जैसे सभी एक साथ उसमें तन्मय हो गये हों।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का सत्य अलग-अलग होता है और मनुष्य उसी सत्य के द्वार पर उतरता है। यही स्थिति इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है।
(1) प्रस्तुत पंक्तियों में उदात्त और अभिजात्य युक्त शब्दावली का प्रयोग वीणा से निकलने वाले संगीत के लिए किया गया है।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

यह सर्वथा उचित है।
(2) अन्तिम पंक्तियों में सबका एक साथ आनन्दमग्न होना और अलग-अलग पार उतरना बतलाकर कवि ने यह स्पष्ट संकेत कर दिया है जो व्यक्ति जितनी साधना करता है, उसी अनुपात में वह पार उतरा करता है।

रानी ने अलग सुनाः
छंटती बदली में एक कौंध कह गयी-
तुम्हारे ये मणि-मणिक, कंठहार, पट-वस्त्र,
मेखला किंकणि
सब अन्धकार के कण हैं ये! आलोक एक है
प्यार अनन्य! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस-भार मेघ को,
थिरक उसी की छाती पर, उसमें छिप कर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास भरी।
रानी
उस एक प्यार को साधेगी।'असाध्य वीणा' कविता के अन्तिम भाग से अवतरित इस पद्यांश में कवि ने यह प्रतिपादित कि आत्मान्वेषण, समर्पण और अहं के विगलन के पश्चात् प्रियंवद की साधना पूरी हो गयी और उसके साथ ही साथ वीणा भी संकत हो उठी। वीणा से निकलते हुए स्वर अभूतपूर्व थे। उनकी यह अभूतपूर्वता इसी से प्रमाणित होती थी कि उससे निकला हुआ स्वर-संगीत था तो एक जैसा ही, किन्तु उपस्थित लोगों को अलग-अलग ढंग से अनुभव हुआ।

राजा ने जब उस स्वर को सुना, तब वे जाग्रत हो गये। उन्हें लगा कि यश की देवी वरमाला लिए हुए उकना स्वागत कर रही है। उन्हें सारा संसार और प्रलोभन के साधन व्यर्थ लगने लगे। रानी की स्थिति और भी श्रेष्ठतर थी। जब रानी ने वीणा के स्वर को अपने कानांे से सुना, तब उन्हें लगा कि जैसे किसी बदली में से कोई बिजली की कौंध चमककर थोड़ी देर के लिए ज्ञान-चेतना का प्रकाश फैला गयी हो।

वह चमक अर्थात् विद्युत चमक जो जागृति की सूचक थी, मानो रानी को यह संकेत दे गयी कि तुमने मणि-माणिक्य से निर्मित जो कण्ठहार धारण कर रख है, जो रेशमी वस्त्र पहन रखे हैं, वे सब व्यर्थ है, उनका कोई अर्थ नहीं है। इतना ही नहीं, रानी ने अपनी कमर में जो मेखला धारण कर रखी है, वह भी उसे अन्धकार का कण प्रतीत हुई। भाव यह है कि रानी को यह लगा कि यह सब वस्त्राभूषण आदि कोई मानी नहीं रखते हैं, ये क्षाणिक है और इनका कोई भी स्थायी महत्व नहीं है। यदि इस सृष्टि में कुछ भी सत्य है या कहीं प्रकाश है, तो वह केवल एक ही है और वह है- प्रेम और उससे उत्पन्न समर्पण भाव।
उपर्युक्त संदर्भ में ही अज्ञेय जी रानी की अनुभूतियों को शब्दबद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं। वे कह रहे है कि रानी को यह भी लगा कि जैसे प्रकाश आकाश में चमकने वाली विद्युत की कौंध सारे आकाश को घेर लेती है और बादलों में जो रसात्मकता है, उसको भी अपने में समेट लेती है और फिर सारीदुनियाकी रससिक्त कर देती है, वैसे ही संगीत की स्वर-लहरी ने रानी के मन-प्राण को रससिक्त कर दिया।

वह प्रेम भावना की रसपूर्ण धारा से भर उठी। उसे यह भी लगा कि जिस प्रकार विद्युतलता आसमान के वक्ष में कौंधकर फिर उसी में लीन हो जाती है, उसी प्रकार प्रेम का यह संदेश रानी के हृदय के भीतर जाकर छिप गया है।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

रानी इस संगीतमय ध्वनि को सुनकर आश्वस्त हो गयी, उसका हृदय विश्वास से परिपूर्ण हो गया और उसके मन में यही भावना उत्पन्न हुई कि अब तो वह इन बहुमूल्य वस्त्राभूषणांे के मोह को त्यागकर केवल प्रेम और उससे जुडे हुए समर्पण भावको ही अपने जीवन में अपनायेगी। तात्पर्य यह है कि रानी का अब तक का मोहान्धकार दूर हो गया और वीणा से निकली हुई ध्वनि ने उसके भीतर की सोयी हुई वास्तविक चेतना को जाग्रत कर दिया। यह सब आत्मान्वेषण, आत्मशोधन और अंहकार के विलयन के पश्चात् की स्थिति है जो रानी को अनुभव हुई।

(1) पद्यावतरण मे सामान्यतः तो सहज और व्यवहारिक भाषा का ही प्रयोग किया गया है, किन्तु बीच-बीच में प्रसंग की माँग के अनुसार मेखला, किंकिणी, पटवस्त्र, कण्ठहार, आलोक, अनन्य और विद्‌युल्लता जैसे शब्दों का प्रयोग करके अज्ञेय जी ने पद्यांश को एक गरिमा और आभिजात्य प्रदान कर दिया है।
(2) इस अंश में अज्ञेय की भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा भी व्यक्त हुई है। उन्होेंने भारतीय दर्शन के अनुसार यह भी प्रमाणित कर दिया है कि संसार में जितने भी प्रलोभन के साधन हैं और जितने भी आभूषण हैं, वे सब क्षणिक है, नाशवान है। यदि कहीं कोई सत्य है तो वह प्रेम की भावना ही है, जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है और जीवन को सार्थकता प्रदान करती है।

परिणाम

श्रेय नहीं कुछ मेराः
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब-कुछ को सौंप दिया था-
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का थाः
वह तो सब कुछ की तथता थी-
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।

प्रस्तुत पद्यावतरण 'असाध्य वीणा' कविता के अन्तिम भाग से अवतरित है। जो वीणा असाध्य थी, वह जब सध गयी तब उससे जो स्वर निकला, उसका अलग-अलग प्रभाव सभी व्यक्तियों पर पड़ा। उस स्वर-लहरी में रानी 'प्रेम अनन्य है' जैसी ध्वनि सुनी तो राजा ने यह अनुभव किया कि विजय की देवी वरमाला लिए हुए राजा की यश सिद्धि में मंगलमान गा रही है। सभासदों ने वीणा से निकले हुए संगीत को अलग-अलग अर्थों में ग्रहण किया।

किसी ने उसे ईश्वर का कृपा-वाक्य माना, किसी ने आतंक से मुक्ति का आश्वासन, किसी व्यापारी ने उस संगीत की लहरी में सोने की भनक सुनी तो किसी गृहस्थ ने अन्न की सौंधी हुई खुश्बू का अनुभव किया, किसी ने उसमें पायल की ध्वनि सुनी तो किसी को उसमें शिशु की किलकारी सुनाई दी।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

इस प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न करके वीणा मौन हो गयी। राजा सिंहासन से नीचे उतरे और रानी ने संगीतकार को रत्नजङित सतलङी माला अर्पित की, किन्तु संगीतकार ने बङे आदरभाव से गोद में रखी हुई वीणा को धीरे से धरती पर रखा और कहने लगा कि यदि यह असाध्य वीणा सध गयी है तो इसमें मेरा कोई योगदान नहीं है। वीणा को साधने में मैं अपना श्रेय नहीं मानता हूँ। वास्तव में तो इस वीणा को अपनी गोद में रखकर मैं स्वयं शून्य में डूब गया था।

एक प्रकार से वीणा के द्वारा मैंने अपने आपको उस सर्वोच्च सत्ता को समर्पित कर दिया था जो सभी की सुरक्षा करती है। कलाकार के कहने का अभिप्राय यह है कि यदि मनुष्य किसी कार्य को कर लेता है तो भी उसे अपने आपको कत्र्ता नहीं मानना चाहिए। वास्तव में वह माध्यम होता है, कत्र्ता तो वही ईश्वर है जो सबकी रक्षा-व्यवस्था करता है। जो जितना देता है, वह उतना ही प्राप्त करता है। अतः व्यक्ति को अपना सब-कुछ उसी सर्वोच्च शक्ति को समर्पित कर देना चाहिए।

संगीतकार ने कहा कि वीणा से जो स्वर-लहरी निकली है, जो समूची सृष्टि में मौन भाव से व्याप्त है। उस शक्ति को न तो विभाजित किया जा सकता है और न उसकी व्याख्या की जा सकती है, वह तो अद्भूत है और शब्दहीन होकर सभी के स्वरों में व्यक्ति विशेष को आधार पर प्रस्फुटित होती रहती है।

कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की वाणी चाहे वह कैसी भी क्यों न हो, उसी परम सता की वाणी है। अतः उसे अपनी मानकर अंहकार ग्रसित होने का कोई औचित्य ही नहीं है। वास्तविक और सर्वोच्च शक्ति का अनुभव आत्मशोधन, व्यक्तित्व-विलयन और अहंकार के शमन द्वारा ही हो सकता है। यही इस पद्यांश में वर्णित हुआ है।
(1) उपर्युक्त पद्यांश में वह स्थिति वर्णित है जिसमें व्यक्ति व्यक्तित्व का शोधन करके अपने आपको सर्वोच्च शक्ति को समर्पित करता हुआ जीने का अभ्यास करता है।
(2) यह पद्यांश दार्शनिक विचारणा से युक्त है। इसमें शून्य, महाशून्य, महामौन, अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित और अप्रमेय शब्द इसी भाव के द्योतक है।
(3)'तथता' जैसा शब्द तथागत गौतम बुद्ध और उनकी दार्शनिक विचारणा की ओर संकेत करता है। भाषा विषयानुकूल है और उसमें आभिजात्य देखने को मिलता है।[6]

निष्कर्ष

असाध्य वीणा अज्ञेय की एक लम्बी कविता है, लेकिन जैसी चर्चा मुक्तिबोध (अंधेरे में, चांद का मुंह टेढ़ा है) और धूमिल (पटकथा) की लम्बी कविताओं को मिली, वैसी असाध्य वीणा को नहीं मिली. यद्यपि इसका प्रकाशन इनसे पूर्व (आंगन के पार द्वार–1961) हुआ था. इसका कारण कई आलोचक असाध्य वीणा के रहस्यवाद को मानते है. असाध्य वीणा की मूलकथा बौध धर्म के एक सम्प्रदाय जेन या ध्यान संप्रदाय से ली गयी है. ताओवादियों के यहाँ भी इसकी कहानी मिलती है. यह ओकाकुरा काकुजो के The Book of Tea में The Taming of the Harp के नाम से संकलित है. आरम्भिक बौद्ध धर्म भौतिकवादी है, परन्तु महायान जेन सम्प्रदाय तक आते-आते यह काफी हद तक औपनिषदिक भाववाद के निकट पहुंच जाता है. महायान के विज्ञानवाद एवं शून्यवाद सम्प्रदाय भी क्रमशः विज्ञान और शून्य की परमता स्वीकारते हैं, जिनकी संकल्पना काफी हद तक उपनिषदों के ब्रह्म जैसी है. वस्तुतः महायान बौद्ध धर्म के औपनिषदिक चिन्तन से इतनी निकटता के कारण ही शंकराचार्य को "प्रच्छन्न बौद्ध" होने का आरोप झेलना पड़ा था.

जेन सम्प्रदाय यह मानता है कि सत्य का ज्ञान वस्तुतः आत्मज्ञान है. इसे बाह्य आडम्बरो और पुस्तकों से प्राप्त नहीं किया जा सकता. अज्ञेय ने इसी जेन सम्प्रदाय की एक कथा को अपनी विचार प्रक्रिया के साथ मिलाकर असाध्यवीणा में प्रस्तुत किया है. यहाँ किरीटी तरू परम सत्य का ही प्रतीक है, जिससे निर्मित वीणा का संगीत उस सत्य की अभिव्यक्ति है. बहुत जाने–माने कलावंत और संगीतकार इस वीणा को बजाने में इसलिए निष्फल

IJIRSET

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: **www.ijirset.com**

Vol. 8, Issue 8, August 2019

होते हैं, क्योंकि उनमें न सिर्फ उस परमसत्ता के प्रति समर्पण का अभाव था, बल्कि अपने कलावंत होने का अभिमान भी कूट-कूट कर भरा था. प्रियंवद कलावन्त नहीं है. वह स्वयं को साक्षी कहता है- जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी.

यह सत्य अनकहा है. वाणी की गति इस तक नहीं है . इस सत्य का सिर्फ साक्षी हुआ जा सकता है. यह सत्य सिर्फ अनुभूति का विषय है और इस अनुभूति के लिए आवश्यक है अहम् का पूर्ण परित्याग. अपने अहम् को गलाकर ही जीवन सत्य का अनुभव किया जा सकता है. प्रियंवद स्वयं को तरुतात की गोद में बैठा हुआ मोद भरा बालक मानता है-

वीणा यह मेरी गोद रखी है, रहे,
किन्तु मैं ही तो तेरी गोदी बैठा मोद-भरा बालक हूं.

परम सत्य के प्रति समर्पण के बिना उससे एकाकार नहीं हुआ जा सकता. प्रियवंद समर्पित होकर किरीटी तरू में जैसे परकाया प्रवेश कर लेता है और जीवन सत्य के विभिन्न रूप उसके स्मृति पटल पर क्रमशः आने लगते है.

हां मुझे स्मरण है..............

वीणा का बोलना उस परम सत्य की ही अभिव्यक्ति है.
'जो शब्द हीन होकर भी सबमें गाता है'

परन्तु, इस सत्य का प्रभाव सब पर एक नहीं होता- जाकि रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन्ह तैसी.
राजसभा में उपस्थित सभी व्यक्तियों ने अपनी-अपनी समझ समझ सोच और संस्कार के अनुसार इस सत्य को ग्रहण किया. कवि ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से उदाहरण देकर इस सत्ता के प्रभाव को व्यक्त किया है-
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सौंधी खुदबुद

अज्ञेय की काव्य यात्रा की सबसे बड़ी चिन्ता रही है, सर्जना प्रक्रिया या रचना प्रक्रिया. आज तुम शब्द न दो, नया कवि आत्म स्वीकार जैसी कई कवितायें सर्जना प्रक्रिया के रहस्य को उद्घाटित करने की कोशिश करती हैं. अनुभूति की अनिर्वचनीयता एक रचनाकार की सबसे बड़ी समस्या और सीमा है. अज्ञेय जीवन भर इस समस्या से जूझते रहे-

कवि ने गीत लिखे ये बार-बार
उसी एक विषय को देता रहा विस्तार
जिसे कभी पूरा पकड़ पाया नहीं.
यदि किसी गीत में वह अट दिखाता तो वह दूसरा गीत ही क्यों लिखता.

असाध्य वीणा को भी अज्ञेय के सर्जना प्रक्रिया सम्बन्धी चिन्तन से जोड़ा जा सकता है. सर्जना भी वस्तुतः जीवन सत्य की ही अभिव्यक्ति है. सर्जना के लिए अहम् का परितत्याग उसी तरह जरूरी है, जिस तरह ब्रह्म की प्राप्ति के लिए. वस्तुतः सर्जना आत्मविस्मृति के क्षणों में होती है. कवि अपने अहम् को उद्दीप्त करके कविता नहीं रच सकता. प्लेटो ने एक दूसरे सन्दर्भ मे कहा है कि काव्य रचना के समय कवि एक दैवीय आवेग मे होता है. कहने का मतलब यह है कि रचना के समय कवि अपने आप में नहीं होता. यह बात प्लेटो ने कविता को हेय बताने के लिए नकारात्मक सन्दर्भ में कही थी, परन्तु इस तथ्य की सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता. सर्जक होने का दम्भ श्रेष्ठ सर्जना नहीं करवा सकता-

कौन प्रियवंद है कि दम्भ कर इस अभिमंत्रित कारूवादय के सम्मुख आवे.

रचना निसंदेह सर्जक की सर्जना होती है लेकिन साथ-साथ यह रचना ही सर्जक का निर्माण भी करती है-

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 8, August 2019

लोग तो लागी हैं कवित बनावत
मोहि तो मेरे कवि बनावत. (घनानन्द)

वीणा भले ही प्रियवंद के गोद में रखी है पर वह स्वयं को तरूतात की गोद का बालक मानता है किन्तु जैसे वीणा से संगीत उत्पन्न होता है, वीणा संगीतकार के सामने शिशु के रूप में सामने आती है-
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक- मानो गोदी में सोये शिशु को डाल कर मुग्धा माँ हट जाय, दीठ से दुलराती

इस प्रकार रचना एक साथ सर्जक की सर्जना भी है और उसका सर्जन भी करती है.

कविता में जीवन के विभिन्न सुन्दर और असुन्दर पक्षों के चित्रों की एक बिम्बमाला सी आती है. अज्ञेय अनुभूति को अत्यधिक महत्व देते है. उनकी दृष्टि में जीवनानुभूति और बौद्धिकता के संश्लेष से ही कविता होती है. जीवन के ये विभिन्न चित्र विविध अनुभूतियों को ही प्रतिबिम्बित करते है. ये अनुभूतियां ही अंततः काव्य में ढलती हैं.

मौन भी अभिव्यंजना है
जितना तुम्हारा सच है, उतना कहो,
तुम व्याप नहीं सकते,
तुममें जो व्यापा है उसे ही निबाहो.

इस प्रकार अज्ञेय की दृष्टि में अहम् का विगलन और अनुभूति की प्रामाणिकता- सर्जना के दो अहम् तत्व हैं. उनकी नजर में सर्जना अपने सर्जक से स्वतंत्र होती है-

श्रेय नहीं कुछ मेरा मैं तो डूब गया स्वयं शून्य में

स्वातंत्र्य से उत्पन्न यह सर्जना प्रभाव में भी स्वतंत्रतादायी होती है. राजसभा में संगीत सुनने वालों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार अर्थ ग्रहण किया. यह प्रभाव की स्वतंत्रता का ही परिचायक है.

इस प्रकार असाध्यवीणा एक साथ न सिर्फ जीवन के परम् सत्य की खोज करती है, बल्कि रचना प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को भी उद्‌घाटित करती है.[7]

संदर्भ

1. http://data.bnf.fr/ark:/12148/cb131731157; प्राप्त करने की तिथि: 10 अक्टूबर 2015.
2. ↑ http://jnanpith.net/page/jnanpith-laureates.
3. ↑ मिश्र, विद्यानिवास (मार्च १९९९). अज्ञेय प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन-परिचय. दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज़. पृ॰ आवरण. । ↑ मिश्□, विद्यानिवा□ (2007). अज्ञे□. दिल्ल□: राजपा□. पृ□ 6. आईऍसबीऍन□ 9788170284017.
4. ↑ सामान्य ज्ञान एवं व्यक्ति परिचय. उपकार प्रकाशन. पृ॰ 37. मूल से 4 मार्च 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 29 दिसंबर 2015.
5. ↑ हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ-२८१
6. ↑ मेरी प्रिय कहानियाँ. दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज़. २०१०. पृ॰ प्रस्तावना. अभिगमन तिथि २ फरवरी २००९. ।
7. ↑ "अज्ञेय :: अज्ञेय रचनावली :: खंड : 1, हिंदी समय". मूल से 13 दिसंबर 2017 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 12 दिसंबर 2017.